International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 4, April - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

प्राचीन भारत में प्रमुख व्यावसायिक वर्ग

डॉ बबिता कुमारी
सहायक प्राध्यापक, इतिहास विभाग,
महाकवि कालिदास सूर्यदेव महाविद्यालय, त्रिमुहान–चन्दौना, दरभंगा
(अंगीभूत ईकाई, ल.ना.मि.वि.वि, दरभंगा,बिहार)

वैदिक युगीन समाज में अनेक प्रकार के उद्योग–प्रचलित थे। गाँवों और नगरों में अनेक धन्धों को करनेवाले लोग निवास करते थे। विभिन्न उद्योगों को करने वाले ही लोग भिन्न नामों से पुकारे जाते थे। पूर्ववैदिक युग में आर्यो ने अपनी–अपनी रूचि के अनुसार उद्योग को अपनाया तथा उनके पृथक् – पृथक् नामकरण किये जो उत्तरवैदिक काल में आकर अलग – अलग वर्ग के रूप में विकसित हुए ये ऐसे ही औद्योगिक वर्ग थे।[1]

तक्षा(बढ़ई) खेत जोतने के लिए हल तथा घर के लिए लकड़ी की विभिन्न वस्तुएँ बनाता था। वह लोगों के घूमने और सामान ढ़ोने की गाड़ी भी निर्मित करता था जिसकी छत 'छंदिरा' कही जाती थी।[2] उस युग में नाव और पोत भी बनाए जाते थे, जो निश्चय ही 'तक्षा' की शिल्प–कला से बनते रहे होंगे। वह 'परशु' और वाशी (वसूले) से लकड़ी को गढ़ता था तथा उस पर सुन्दर नक्काशी करता था।[3] ऋग्वेद में सौ परिवारों वाले पोतों का उल्लेख है।[4] वह लकड़ी का 'तल्प' निर्मित करता था।[5] इनके अतिरिक्त तक्षा 'प्रोष्ठ' का भी निर्माण करता था, जो लकड़ी का बनता था।[6] स्त्रियाँ प्रायःउस पर सोती थी कालान्तर में 'तक्षा' रथ भी बनाने लगा था। रथ का निर्माण सुन्दर और सुविधाजनक रूप में होता था तथा यह आशा की जाती थी कि रथ से सुरक्षित रूप में यात्रा की जा सकेगी।[7] इसके अतिरिक्त रथ का स्थान युद्ध स्थल में थी जो अत्यन्त महत्व का था। स्वस्थ घोड़ों के बल से बढ़ने वाला रथ युद्धभूमि में अत्यन्त कुशलतापूर्वक अपना कौशल प्रदर्शित करता था।[8] ऋग्वैदिक समाज में 'वासोवाय' नामक वर्ग वस्त्र बुननेवाला होता था जो विभिन्न प्रकार के वस्त्र बुनता था। वह करघे (वेग) पर वस्त्र बुनने का काम करता था। बुननेवाली करघी को 'तसर' कहते थे।[9] 'ताना' को 'ओत' और बाना को 'तन्तु' कहते थे।[10] बुनकर को 'वय' कहा जाता था।[11] युवा स्त्रियाँ भी बुनने का कार्य किया करती थी।[12] एक स्थल पर यह सन्दर्भ मिलता है कि एक स्त्री अपने अधूरे छोड़े गए बुनने के काम को पूरा करने के निमित्त पुनः बुनने के लिए गई।[13] एक मंत्र से विदित होता है कि माँ अपनी सन्तान के लिए वस्त्र बुन रही थी।[14] पूर्व वैदिक युग में प्रायः अनेक प्रकार के सुन्दर वस्त्र बुने जाते थे।[15] बुनाई के लिए उस समय धुनाई विषयक पाठशालाएँ थीं। जहाँ बुनाई कला के लिए श्रेष्ठ शिक्षा दी जाती थी।[16] उस समय ऊन के वस्त्र अधिक बुने जाते थे।[17]

'कमारि' समुदाय उस समय धातु का कार्य किया करता था। कार्शणायस (लोहा या तांबा), हिरण्य (हरित, सुवर्ण, जातरूप) रजत (चाँदी), त्रपु (टिन) आदि धातुएँ उस समय के लोगों को ज्ञात थी और वे धातुओं की अनेक वस्तुएँ बनाते थे। ऋग्वेद से ज्ञात होता है कि असुर आयोजालाह (लोहा) के विभिन्न कार्या में दक्ष थे।[18] कर्मार कृषि के निर्मित 'अभी' 'दात्र' या 'सण्य' 'फाल' (हल) आदी निर्मित करता था।[19]वह धातु को अग्नि में गलाता था। अग्नि को वह चिड़ियों के पंखों की धौंकनी देता था तथा सूखी लकड़ियों को जलाकर धातु को गलाता था तत्पश्चात् गली हुई धातु से बर्तन बनाता था। बर्तन बनाने में उसे धातुओं का अत्यधिक पीटना–पाटना पड़ता था।[20]

घरेलू सामानों के अतिरिक्त धातु के विभिन्न अस्त्र–शस्त्र भी बनते थे, जैसे असि, परशु, पवीर, बाण, भाला, खड्ग आदि।[21] ये समस्त वस्तुएँ कर्मार वर्ग के लोग ही निर्मित करते थे।

'हिरण्यकार' नाम वर्ग सोने के आभूषण निर्मित करता था।[22] सोना सिंधु नदी और भूमि दोनों स्थानों से प्राप्त किया जाता था। इसलिए सिंधु को 'हिरण्यवर्तिनी' अथवा 'हिरण्ययी' कहा गया था।[23] भूमि से भी सवर्ण निकाला जाता था।[24] उस साफ करने की विधि भी वे लोग जानते थे।[25] 'निश्क' (हार), कुरीर (मांगटीका), कुम्ब (सिर का आभूषण), कर्णशोभन आदी अनेकानेक अलंकार स्वर्ण के बनते थे।26 जो विवाहादि शुभ अवसरों पर धारण किए जाते थे और पिता द्वारा अपनी कन्याओं का प्रदान किए जाते थे। पुरूष, स्त्री और बच्चे की साज–सज्जा के लिए सोने के आभूषण बनाए जाते थे।

'कुलाल' वर्ग के लोग मिट्टी के विभिन्न प्रकार बर्तन बनाते थे जिन्हे आज 'कुम्हार' कहा जाता है। इस वर्ग का विकास उत्तरवैदिक युग में अधिकता से हुआ, किन्तु इसका व्यवसाय पहले से ही उन्नत था। उस युग में मिट्टी के विभिन्न प्रकार के पात्र बनाये जाते थे जो अनेक प्रकार के उपयोगों में लाए जाते थे।27

'चर्मकार' समुदाय चमड़े की अनेकानेक वस्तुएँ बनाता था, जिनमें प्रत्यंचा रथ कसने की रस्सियाँ, गोफना, चाबुक या मशक (दति) रास आदि वस्तुएँ प्रमुख थीं। चमड़े को कील से आबद्ध करके सिला जाता था तथा उसे भिंगोकर उपयोग में लाया जाता था उस युग में विभिन्न प्रकार बाजे आदि चमड़े के बनते थे।[28] परवर्ती काल में इन व्यावसायिक वर्गो का समुचित विकास हुआ। उत्तरवैदिक ग्रन्थों और सूत्र– साहित्य तथा अन्य उत्तरवर्ती साहित्य में ऊपर उद्धृत व्यवसायिक वर्गो का उल्लेख मिलता है। 'यजुर्वेद' के अतिरिक्त 'वाजसनेयी संहिता' शतपथ ब्राह्मण पंचविश ब्राह्मण, अथर्ववेद आदि में अनेक शिल्पकारों के कार्यो का वर्णन किया गया है।' वाजसनेयी संहिता से विदित होता है कि उस युग में 'धीवर, दाशा और कैवर्त जैसे कई तरह के मछुए कीनाश और वप जैसे कृषि करनेवाले किसान आदि विभिन्न कार्य करने वाले लोग थे। उस युग में कपड़े धोने का काम करने वाले वास पल्पूली (धोबी), मणि का धंधा करने वाले 'मणिकार' बेत का काम करनेवाले 'विदलकार' और रस्सी बाँटने का काम करने वाले 'रज्जुसर्ज्ज कहे जाते थे। इनके अतिरिक्त 'रथकार' धनुशकार, इशुकार, अयसताप (लोहा गलानेवाले), कुलाल (कुम्हार) वनप (जंगलों की देख–रेख करने वाले) आदि भी समाज में थे।[29] व्यापार करनेवाले 'वणिक' भी थे तथा ब्याज पर रूपया प्रदान करनेवाले लोग जिन्होंने कुसीदी कहा जाता था।[30] 'श्रेश्ठि' और प्रधान व्यापारी थे जिनके लिए 'श्रैश्टय शब्द का प्रयोग किया गया है।[31] कपड़े रंगने का काम करनेवाली स्त्रियों को 'रजयित्री' कहा जाता था। 'कसीदा' और सूई का काम करनेवाली स्त्री 'पेशस्कारी' के नाम से ख्यात थी। इसी प्रकार बाँस का काम करनेवाली 'कंटकीकारी' और बेत की टोकरी बनानेवाली 'विदलकारी' के नाम से जानी जाती थी। यजुर्वेद में हिरण्य, अयस, भयाम, सीस और त्रपु जैसी अनेक धातुओं का उल्लेख है, जिससे यह स्पष्ट होता है कि उस युग में विभिन्न धातुओं के शिल्पकार थे। अथर्ववेद में ताँबे के लिए 'लोहित अयस और लोहे के लिए श्याम अयस का प्रयोग हुआ है।[32]

'तक्षा' और रथकार दो भिन्न वर्गो के रूप में वर्णित किए गए है। अश्वमेघ यज्ञ के अवसर पर 'तक्षा' को लकड़ी के आधार, पोत, गाड़ी, आसन आदि निर्मित करने के लिए निर्देशित किया जाता था और 'रथकार' को केवल रथ।[33] इस युग में रथकार इतना महत्वशाली हो गया कि उस श्रोत यज्ञ सम्पन्न करने की अनुज्ञा प्रदान कर दी गई। यज्ञ के साथ–साथ वह अपना उपनयन भी करा सकता था और इसके द्वारा वह 'द्विज' की श्रेणी में आ सकता था। अनेक प्रकार के वस्त्रों का वर्णन सूत्र–ग्रंथों में किया गया है जिनसे यह ज्ञात होता है कि विभिन्न प्रकार के

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 4, April - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

वस्त्रों को बुननेवाले लोग समाज में थे। 'पारस्कर गृहसूत्र' में विविध वस्त्रों का उल्लेख हुआ है।[34] जो उस काल के वस्त्र–उद्योग पर प्रकाश डालते हैं। विशेष प्रकार के कपड़े निर्मित करने के लिए उस युग में बुनकर लोग सूत को तीन पानी में भिंगोते थे। उसकी मजबूती और चिकनेपन के लिए कभी–कभी उसे घी से भी माँजते थे।[35] उश्णीय, अधिवास आदि विभिन्न प्रकार के पहनावों के वस्त्र बुने जाते थे।[36]

धातु के उद्योग का भी उत्कर्श इस युग में हुआ। समाज में 'लोहकार' और 'स्वर्णकार' दो पृथक वर्ण के रूप में स्वीकार किए जा चुके थे।[37] हल, छूरा सूई, चाकू आदि विभिन्न वस्तुएँ लोहार बनाता था। यही नहीं, वह युद्ध संबंधी अस्त्र–शस्त्र भी तैयार करता था।[38]

इस युग के ऐसे संदर्भ मिलते है जिनसे यह स्पष्ट होता है कि स्वर्णकार अत्यंत कलात्मक आभूषण बनाता था। स्त्री–पुरूष दोनों के अलंकार अत्यंत आकर्षण ढंग से बनाय जाते थे। शाखायन के अनुसार यज्ञ में सम्मिलित होनेवाली स्वर्णाभूषण धारण किए रहती थी।[39] यज्ञों के अवसर पर चांदी, सोने और जवाहरात के असंख्य आभूषण दर्शित होते थे।[40]

'चर्मकार' घरेलु उपयोग के निमित्त चमड़े की अनेक वस्तुएँ बनाता था इसलिए समाज में उसका स्थान महत्वपूर्ण था। स्त्री–पुरूष और बच्चों के लिए उपानह का निर्माण वही करता था, वस्तुतः समाज में चमड़े के विभिन्न प्रकार जूते बनने थे। राजसूय यज्ञ के समय पैर में जूते पहने जाते थे।[41] घरेलू उपयोग के लिए चमड़े की अन्यान्य वस्तुएँ बनती थीं। चमड़े के बने पत्रों के घी, शहद, तेल, अन्न आदि रखे जाते थे।[42]

'कुम्हार' और कुलाल एक ही थे। वे विभिन्न प्रकार के मिट्टी के बर्तन बनाते थे जो समाज में भोजन और जल के लिए अत्यंत पवित्र पात्र माने जाते थे। अश्वमेघ यज्ञ के समय कुलाल की आवश्यकता पड़ती थी। राजा उसे आमंत्रित करता था और छोटी–बड़ी ईटें और पोत बनाने का निर्देश देता था, जो अश्वमेघ यज्ञ सम्पन्न करने के लिए आवश्यक था। युद्ध के समय बाण से बच्चने के लिए ढाल भी बनाता था।[43] कच्छप जातक में उल्लिखित है कि जब कुलाल के पुत्र के रूप में बोधिसत्व का जन्म हुआ था, तब वे चाक चलाने के लिए फरसे से मिट्टी खोदते थे। बौद्ध–साहित्य से विदित होता है कि कुलाल लोग अपना समान गदहों पर लादकर तक्षशीला जैसे नगरों में जाकर बेचते थे।[44]

बौद्ध–युग में नगरों और अधिस्ठानों का विकास हुआ, जिसके कारण औद्योगिक संस्थानों का महत्व बढ़ा है। इस युग में विभिन्न प्रकार की औद्योगिक और व्यावसायिक जातियाँ बनी जिनकी अपना पृथक् –पृथक् व्यवसाय और उद्योग था। इस युग के व्यावसायिकों ने पश्चिमी और पूर्वी एशिया में भ्रमण किया तथा नवीन व्यापारिक केन्द्रों का ज्ञान प्राप्त किया। विभिन्न औद्योगिक और व्यावसायिक वर्गो के विकास के कारण उनके पृथक्–पृथक् संगठन बने, जो श्रेणी कहे गए। धातु के अनेक प्रकार के सिक्कों का प्रचलन इसी युग में हुआ।

शहरों और नगरों के बस जाने के कारण व्यावसायिकों को नया बाजार मिला जहाँ उनकी वस्तुएँ हाथों हाथ बिकने लगी। गाँव की अपेक्षा नगर में उन्हें माल बेचने का अधिक अवसर मिला तथा सुख और समृद्धि का जीवन व्यतीत करने के लिए मार्ग प्रशस्त हुआ। इन सुविधाओं के अतिरिक्त नगर के आवागमन के साधन सुलभ थे तथा वस्तुओं का क्रय–विक्रय हो जाता था।

बौद्ध–साहित्य से लकड़ी का काम करने वाले वर्ग बढ़ई (बड्ढकि) का समुचित ज्ञान होता है। एक जातक से विदित होता है कि कुछ बढ़ई वाराणसी के निकट आकर रहने लगे थे।[45] वे जंगलों से लकड़ियाँ काटकर लाते थे तथा नावों, हर पोतों का निर्माण करते थे। यही नहीं, लकड़ियों का मकान भी बनाया जाता था। किन्तु कौटिल्य ने लकड़ियों के ऐसे मकान को आग लग जाने के कारण वर्जित बताया है।[46] उस युग में यन्त्रचालित विशाल हाथी का निर्माण किया जाता

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 4, April - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

था, जिस पर साठ (60) व्यक्ति घूम सकते थे। यह कार्य उनके अद्‌भुत शिल्प और कला का परिचायक था। इसी तरह की एक कथा के अनुसार एक बढ़ई ने अपने राजा के भय से लकड़ी का गरूड़ बनाया तथा उसमें यन्त्र लगाया। तत्पश्चात् अपने परिवार के साथ उसपर बैठकर उड़ गया।[47] ऐसे यन्त्रचालित वाहन बनाने के अतिरिक्त वे विभिन्न प्रकार की गाड़ियाँ तथा उनके विभिन्न हिस्से भी बनते थे। बौद्ध–युग में अधिकांश, भवन और आवास लकड़ी के बनाए जाते थे। राजाओं और अभिजात वर्ग के भी प्रासाद लकड़ी के ही निर्मित किए जाते थे। अजातशत्रु का भी प्रासाद लकड़ी का था। बढ़ई काटने के लिए उस पर चिह्न खींच देता था और तब चिह्न के अनुसार उसे काटता था।[48] काटने में मुलायम हिस्से को निकाल दिया जाता था कटे–कड़े हिस्से को रख लिया जाता था।[49] समुद्रजवानिज जातक में जहाजों और नौकाओं के बनाने का उल्लेख है। ऐसे–ऐसे विशाल जहाज बनाये जाते थे जिनमें एक हजार यात्री बैठ सकते थे।

धातु का काम करनेवाले अपनी कला में दक्ष और प्रवीण थे। वे धातु को गलाकर तौल के लिए लोहे की माप बनाते थे। जब तक वह माप को पूर्णतः ठीक नहीं बना लेते थे, तब तक उसे गरम और ठण्डा करते थे।[50] धम्मपद से विदित होता है कि बाण बनाने वाला उसे अग्नि से तपाया था और उसे सीधा और तीव्रतर बना सकने में समर्थ होता था।[51] मिलिंदपण्हो में लोहा, सोना, सीसा, टीन, तांबा आदि की वस्तुएँ बनाने वाला पृथक वर्ग में थे।[52] लगता है उस समय धातु का उपयोग अपनी पराकाष्ठा पर था धातु की विभिन्न वस्तुएँ बनाने वाला वर्ग अत्यन्त सुन्दर सुडौल, तीव्र और आकर्षक वस्तुएँ निर्मित करता था।[53] उस समय यन्त्रों की सहायता से भी धातुओं के विविध सामान बनते थे, जो घरेलू उपयोग में तो आते ही थे, साथ ही सार्वजनिक उपयोग में भी आते थे।[54] हल, फावड़ा, कुदाल, हँसिया आदि विभिन्न औजार खेती के लिए बनाए जाते थे। धातुओं की विभिनन वस्तुएँ और प्रतिमाएँ भी बनाई जाती थी।

बौद्ध युग के अनेकानेक स्त्रोतों से विभिन्न व्यवसायों और उद्योगों का पता चलता है। लोहार हल, भाला, खड्ग तो बनाता ही था, साथ ही घरेलू–बर्तन भी बनाता था। वह लोहे को अत्यधिक तपाकर अत्यंत तीव्र और अकलुश इस्पात की तरह चमकीला और उज्जवल बनाता था। चिकित्सा संबंधी शल्यक्रिया के औजारों का भी वह निर्माण करता था।[55] स्वर्णकार विभिन्न प्रकार के आभूषणों का निर्माण करता था, जो अत्यंत कलात्मक और आकर्षक ढंग से बनाये जाते थे। तत्कालीन समाज के अधिकांश लोग स्वर्णाभूषणों के प्रति रूचि रखते थे तथा भारीरसज्जा में उनका उपयोग करते थे।[56] स्त्री–पुरूष सभी अलंकार – प्रिय थे।[57] उस समय बहुमूल्य रत्न भी आभूषणों में जड़े जाते थे, जिससे उनकी शोभा अद्विितीय हो जाती थी। इस प्रकार के आभूषण– बनानेवाले व्यक्ति सम्मानित होते थे। कुस जातकों में उल्लिखित है कि एक स्वर्णकार द्वारा बनाया गया आभूषण इतना सुन्दर और अद्विितीय उतरा था जो अवर्णनीय था।[58] मज्झिम निकाय में वर्णित है कि एक रत्नकार ने आकर्षक वेलुरिय नामक रत्न को आठ पहलों में तराशकर अत्यंत आश्चर्यजनक बनाया। वह जब पीत वस्त्र में जड़ा गया तब उसकी चमक चतुर्दिक फैलने लगी थी।[59] विशाखा के विवाह के अवसर पर पाँच सौ स्वर्णकार आभूषण बनाने के लिए बुलाए गए थे। रत्नजड़ित आभूषणों की इतने अधिक परिमाण में आवश्यकता थी कि उन्हें बनाने के लिए बहुत से स्वर्णकारों को नियुक्त करना पड़ा जो चार मास में भी उन्हें नहीं बना सकते थे।[60]

बौद्ध – युग में वस्त्रोंद्योग का यथेष्ट विकास हुआ था। उस युग में सूती, रेशमी और ऊनी अनेक प्रकार के वस्त्र निर्मित होते थे तथा स्त्री, पुरूष और बालक– बालिकाओं के अनेकानेक परिधान भी बनते थे। प्रचुर धन–व्यय करके मनोनकूल आकर्षक वस्त्र क्रय किए जाते थे। एक रानी ने सौ सहस्त्र मुद्रा में लाल परिधान खरीदा था।[61] दीघनिकाय में सूती (कम्पासिक) रेशमी (कौशेय), ऊनी (और्ण) आदि अनेक प्रकार के परिधानों का उल्लेख हुआ है, जिससे उस युग

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 4, April - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

के तन्तुवाय की कला और कल्पना का भान होता है।[62] राजगह (राजगृह) नगर के बाहर की एक सड़क का वर्णन हुआ है जो बुनकरों के आवास से परिपूर्ण था।[63] ऐसे भी बुनकर होते थे जो पहले से लोगों की मांग के अनुसार वस्त्र – निर्माण करते थे।[64]

चर्मकारों के वर्ग भी उस समय अधिक संख्या में निवास करते थे जो चमड़े की रस्सियाँ, जूते, छाते आदि बनाते थे।[65] समान रखने के लिए बड़े–बड़े झोले भी वे बनाते थे।[66] उनके संघों से लगता है कि चर्म – उद्योग अत्यधिक विकसित था तथा उससे विभिन्न प्रकार की वस्तुएँ बनाई जाती थी।

उस समय हाथी दाँत की विभिन्न कलात्मक वस्तुएँ बनाने वाले का वर्ग भी समाज में था जो अपने अद्भुत हस्तकौशल और कलात्मक कल्पना से हाथीदाँत की विभिन्न वस्तुएँ बनाता था। इस प्रकार के उद्योग काफी था। इस उद्योग को करनेवाले लोग जिस स्थान पर रहते थे उसे दंतकार वीथी (सड़क) कहते थे।[67] ऐसे व्यवसायी कभी –कभी जंगलों में जाकर हाथी का शिकार करते थे और औद्योगिक संस्थाओं को हाथी दाँत की आपूर्ति करते थे।[68] उस काल में हाथी दाँत के विभिन्न आभूषण, खिलौने घरेलू वस्तुएँ आदि निर्मित की जाती थी। हाथी दाँत के उद्योग को 'दन्त वाणिज्य' भी कहते थे।

तत्कालीन समाज में पत्थर तोड़नेवाले 'पाशाणकुट्टक' कहे जाते थे, जो पत्थर की कला में दक्ष होते थे। कभी –कभी पत्थर को इतना नुकीला और तीक्ष्ण बनाते थे जो किसी भी जानवर को मार सकता था।[69] पत्थर के कालाकार स्तम्भ, आधार, दीवारों, भवन, मंदिर आदि बनाए जाते थे। शाक्य स्तूप में इसका सुन्दर उदाहरण देखा जा सकता है।[70]

उस समय तुलिकाकार भी होते थे जो अपनी तूलिका से विभिन्न रंगों का सामंजस्य स्थापित कर स्थापत्य, वास्तु और चित्रकला को अनुपम सौन्दर्य प्रदान करते थे। स्तूपों, विहारों, भवनों और प्रासादों की दीवारों पर मेरू, सागर, झील, सूर्य, चन्द्रमा, स्त्री–पुरूष, पशु–पक्षी आदि के आकर्षक चित्र तूलित किए जाते थे।[71] चित्रकार अपनी अद्भुत कल्पना और संयोजना से मनमोहक और अभिराम चित्रों की उद्भावना करता था। मस्तिष्क में आई हुई भावनाओं के आधार पर वह सुन्दर और आकर्षक चित्र बना सकने में सफल होता था।[72]

कपड़े साफ करने और रंगना भी समाज में प्रचलित था रंगने के पहले कपड़े को अत्यंत स्वच्छ और धवल कर लिया जाता था। अगर वस्त्र गन्दा रहा तो उसपर नीला, पीला, गुलाबी आदि कोई भी रंग अपनी वास्तविक आभा नहीं चढ़ा पाता था।[73] वस्त्रों को रंगने के अलावा बच्चों के खिलौने और गुड़ियों को भी रंगा जाता था।[74] ''वट जातक'' से विदित होता है कि रजक वीधी होती थी, जहाँ कपड़े धोने वाले निवास करते थे।[75] कपड़े साफ करने के लिए 'क्षार' (सोडा) का प्रयोग किया जाता था।[76]

मालाकार (माली) विभिन्न पुष्पों की मालाएँ गूँथकर माला बनाता था, जिनमें अनेक रंग–बिरंगे फूल गुंथे होते थे।[77] समाज में ऐसी मालाएँ खरीदने वाले अधिकता से थे जो पूजन और रंजन दोनों के लिए खरीदते थे। प्रायः उद्यानों से चुनकर पुष्प लाए जाते थे और तब उन्हें गूँथकर माला की आकृति प्रदान की जाती थी।[78]

उपर्युक्त उद्योग करने वालों के अतिरिक्त बौद्ध–साहित्य में वैद्य, ज्योतिषी, लेखक, गन्धव (गंधर्व), नर्तक (नच्चगि –तादि–सुकुसला), हत्थाचरिम, धनुगृह, लवणसंग्रहक, नाई, सिलाई करने वाले, घास काटनेवाले आदि अनेक वर्ग थे जो अपने–अपने कार्य संपादित किया करते थे।[79]

कुम्भकार, रथकार, कम्मार, नापित, कोलिय, स्वर्णकार आदि अनेक औद्योगिक वर्गो का उल्लेख जैन साहित्य में भी हुआ है।[80] तन्तुवाय विभिनन प्रकार के वस्त्र बुनता था।[81] मिट्टी के बर्तन बनाने वाले कुम्हार अपने मृद्भाण्ड कुम्भशाला में निर्मित करता था, पकनशाला में उन्हें पकाता

था, भण्डशाला में एकत्रित करता था तथा पणियशाला में उन्हें बेचता था।[82] तक्षा के रूप में रथकार लकड़ी संबंधी सभी कार्य करता था। वह हल बनाने से लेकर विभिन्न प्रकार की गाड़ियाँ (रथ) बनाता था तथा समाज के लोगों की अनेक रूपों में सहायता करता था। उसकी समाज में प्रतिष्ठा भी थी। राज सभा के चार रत्नों में वह वह भी एक होता था।[83] धातुओं की विभिन्न वस्तुएँ बनानेवाला लोहार '(कम्मार) था जो सँडसी, जयकोट्ठ अहिकरणी की सहायता से धातु की अनेकानेक वस्तुएँ बनाता था।[84] सूई, पिप्लग, अवपक्क, भल्लग, थाल, कण्डय, कवल्लि, तवय आदि उसके द्वारा निर्मित की जानेवाली प्रमुख वस्तुएँ थी।

पाणिनी ने अनेक प्रकार के शिल्पियों का उल्लेख किया है। उस समय हाथ से कार्य करनेवाले के लिए 'कारि' शब्द का प्रयोग होता था। काशिक में 'कारि' का अर्थ कारूशिल्पी स्वीकार किया गया है।[85] कौटिल्य ने भी 'कारि' शब्द को कारू से सम्बद्ध माना है।[86] कात्यायन ने भी शिल्प के लिए कारि शब्द स्वीकार किया है।[87] अपने कार्य में दक्ष और कुशल शिल्पी राजा से प्रशंसा प्राप्त कर राजशिल्पी के रूप में प्रतिष्ठित होते थे।[88] पतंजलि का कथन है कि राजा यहाँ कार्य करने वाला शिल्पी साधारण जन समाज में कोई काम नहीं करता था।[89]

पाणिनी के अनुसार मिट्टी का बर्तन बनाने वाले को कुलाल तथा बर्तन को कौलालक कहा जाता था।[90] तक्षा (बढ़ई) लकड़ी का सामान बनाता था। भवन, प्रासाद आदि में लकड़ी के सभा मण्डप द्वार, किवाड़ आदि बना करते थे।[91] धनुष बनाने वाले धनुष्कार होते थे।[92] रजक विभिन्न रंगों से वस्त्र रंगे जाते थे। चटकीले रंग भी कपड़ों पर चढ़ाए जाते थे। हरिद्रा और महारजन रंग भी प्रयुक्त होते थे।[93]

तत्कालीन युग में धातु और रत्न का भी काम हुआ करता था। स्वर्ग के लिए हिरण्य शब्द ही प्रचलित था।[94] रजक, अयस (लोहा), कांस्य (कांसा) आदि विभिन्न धातुओं का उल्लेख पाणिनी ने किया है।[95] मणि (मणिक) के लिए लोहित शब्द का प्रयोग होता था।[96] सस्यक (पन्ना) वैदुर्य आदि रत्नों का व्यवहार तत्कालीन समाज में होता था।

वस्त्र बुननेवाले के लिए प्राचीन नाम तन्तुवाय का ही प्रचलन था। उस युग में बुनकर के करघे को आवाय या तंत्र और ढ़रकी को प्रवाणी कहा जाता था।[97] करघे से तुरन्त बुने हुए कपड़े के थान का भी उल्लेख है। आवाय वह स्थल तथा जहाँ कपड़ा बुना जाता था।[98] शैफलिक (पारिजात से रंगा हुआ) माध्यमिक (चितौड़ का बना हुआ), शाटक (मथुरा का बना हुआ) आदि विख्यात वस्त्रों का उल्लेख पतंजति ने किया है, जो उस समय समाज में अत्यधिक प्रचलित थे।[99]

चमड़े की विभिन्न वस्तुएँ बनानेवाला चर्मकार था। दुवाली (रस्सी), शकट, जूता आदि चर्मकार ही बनाता था।[100] कर्मार लोहार का काम करता था। गाँव और घर के लिए अनेक उपयोग वस्तुओं का वह निर्माण करता था।[101] चिड़ियों का शिकार करनेवाला शाकुनिक (चिड़ीमार) कहा जाता था। कार्णिका, ग्रैवेयक, ललाटिका, अंगुलीय, हार आदि आभूषण बनाने वाला स्वर्णकार होता था, जो कसौटी पर स्वर्ण की परीक्षा करने में दक्षा होता था।[102]

पाणिनी– काल में ललित कला को भी शिल्प कहा जाता था तथा संगीत, नृत्य, गायन, वादन आदि सभी कलाएँ शिल्प के अंतर्गत आती थीं। उस समय गायक, गायन, मड्डुकिक, झार्झरिक, पाणिघ, ताड्य, नर्तक आदि शिल्पियों का पृथक–पृथक वर्ग था।[103] मौर्य युग तक आकर देश में अनेक प्रकार के व्यवसायों, शिल्पों और शिल्पकारां का विकास हो चुका था। अर्थशास्त्र में विभिन्न प्रकार के व्यवसाय करनेवालों का उल्लेख हुआ है। उस समय धातु का कार्य अपने चरम उत्कर्ष पर था। इस व्यवस्था के संदर्भ में कौटिल्य ने विस्तार से विचार प्रस्तुत किया है। अध्यक्षों की नियुक्ति व्यवसायों के संवर्द्धन के लिए गई थी खानों से सोना, चाँदी, ताँबा, हीरा आदि विभिन्न

वस्तुएँ निकलती थीं। आकराध्यक्ष खाना के काम का प्रधान अधिकारी था उसका प्रधान कार्य था मूल्य विभाग, व्याजी, (परीक्षा–कर), अत्यय (क्षतिपूर्ति–कर) वैधरण, दण्ड, रूप (मूल्य का आठ प्रतिशत) रूपिक तथा विभिन्न प्रकार की खानों से उत्पन्न होने वाली बारह प्रकार की धातुओं और उन धातुओं से तैयार होने माल का संग्रह करना।[104] कौटिल्य का आगे कथन है, 'राजकीय आकराध्यक्ष' का यह कर्तव्य है कि सरकारी कारखानों में तेयार धातुजनित समस्त सामानों का क्रय – विक्रय संबंधी व्यापार किसी एक ही स्थान पर स्थापित करे। यदि राजा से आज्ञा लिए बिना चोरी से अन्य खनिज पदार्थ निकाले तो राजा उसे बन्दी बना कर कड़े से कड़ा काम ले। जो लोग ऐसे अपराधी की सहायता करे उनकों भी उतना ही कठोर दण्ड दिया जाए।[105] मेगास्थनीज में अस्त्र–शस्त्र बनाने वाले वर्ग के लिए लिखा है कि वह वर्ग कर से तो मुक्त था ही राज्य की ओर से उसका पोषण भी किया जाता था।[106] खन्याध्यक्ष के निर्देशन में समुद्र से मोती, सीप आदि निकाले जाते थे।

सुवर्णाध्यक्ष के लिए कौटिल्य का निर्देश है कि वह सोने–चांदी के अलंकार बनाने के कारखाने के लिए एक ऐसी अक्षशाला बनवाये जिसमें अलग–अलग कक्षोंवाले चार मंजिल के भवन बने हो। सुरक्षा की सुविधा के लिए उन विशाल भवन में केवल एक द्वारा हो। सुवर्णकार करने के निमित्त क्षेपणादि शिल्प कार्यो में कुशल, कुलीन और विश्वासी सर्राफों को नियुक्त करें।[107]

कौटिल्य ने स्वर्ण और उससे आभूषणों के विषय में विषद चर्चा की है तथा स्वर्ण पर पूर्णतः राज्य का अधिकार स्वीकार करते हुए तत्संबंधी अनेक नियम बनाये है। उसके समय में स्वर्णभूषण तीन स्थितियों में होकर बनता थ– (1) क्षेपण कर्म, (2) गुण कर्म और (3) क्षुद्र कर्म। आभूषण में काँच और मणि जड़ना क्षेपण कर्म था, स्वर्णसुतों की गुँथाई का काम गुणकर्म था तथा अँगूठी, कूटक (पहुँची) आदि सछिद्र कर्म करना क्षुद्र कर्म था।[108] कौटिल्य के समय अनेक प्रकार के वस्त्र तन्तुवाय बुनते थे। क्षौम (स्थूल रेशम वस्त्र) दूकूल, (महीन रेशमी वस्त्र) क्रिमितान, कंकट (सूती) आदि विभिन्न प्रकार के वस्त्र उस समय प्रचलित थे।[109] कौटिल्य के अनुसार उन और सूत के तन्तुओं का अधिकारी सूत्राध्यक्ष था, जो कुशल कारीगरों द्वारा सूत, कवच और रस्सी बनाता था। उन वल्कल (छाल के रेशे), कपास, सेमर की रूई, सन और क्षौम के सूत विधवा, अंगहीन, अनाथ, कन्याएँ, संन्यासिनियाँ अपराधिनियाँ वेश्याओं की वृद्ध माताएँ, राजदासियाँ और देवदासियाँ कातती थी।[110]

अर्थशास्त्र में उल्लिखित है कि धोबी (रजक) काठ के तख्ते तथा चिकने पत्थर की पटिया पर वस्त्र धोता था। अगर वह किसी कड़ी पटिया पर वस्त्र पटककर फाड़ देता था तो उसे क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। धोबी मुद्गर चिन्ह के अतिरिक्त और कोई चिन्ह वाला वस्त्र पहनता था तो उसे तीन पण का दण्ड मिलता था। धुलने के लिए प्राप्त कपड़े अगर किराए पर देता या बेचता था तो उसे 12 पण का दण्ड मिलता था। दूसरे धोबी को वस्त्र देखकर अगर कोई धोबी वस्त्र बदलता था तो उसे इस अपराध के कारण राजा को दुगुना दण्ड देना पड़ता था तथा वस्त्र के स्वामी को वस्त्र लौटाना पड़ता था। अत्यधिक उज्जवल वस्त्र चार दिन में धुलकर ग्राहक प्राप्त होता था।[111] ग्रीक लेखकों से विदित होता है कि उस समय पोत निर्माण की कला समाज में यथोचित रूप में विकसित थी।[112] ऐसे पोत राजकीय संरक्षण में बनते थे।[113]

मौर्य–काल में भवन के आधार प्रायः पत्थर और ईंट के बनते थे तथा ऊपर के भाग लकड़ी के। स्ट्रैबों ने लिखा है कि पाटलिपुत्र के चतुर्दिक लकड़ी की दीवाल थी जिसमें तीर चलाने के लिए मोखे बने थे।[114] किन्तु कौटिल्य लकड़ी के भवन–निर्माण का विरोधी था क्योंकि उसमें आग लग जाती थी।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 4, April - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

उद्योग और व्यवसाय को समुचित और स्वाभाविक रूप से चलाने के लिए कौटिल्य ने बाधक लोगों के लिए कंटक–शोधन जैसे न्यायालय की व्यवस्था की थी जिसके माध्यम से विघ्न डालने वाले ऐसे लोगों को दंड दिया जाता था। शुंग–सातवाहन–युग में वाणिज्य, व्यापार के अतिरिक्त अनेक प्रकार के शिल्पों का भी विकास हुआ। मनु और याज्ञवल्क्य स्मुतियाँ तत्कालीन आर्थिक जीवन के विविध पक्षों – पर भी प्रकाश डालती है। पतंजली के महाभाष्य से भी आर्थिक जीवन का ज्ञान प्राप्त होता है। स्वर्णकार, वर्धकी (बढ़ई) लोहकर्णक (लोहार), कुम्भकार, तिलपिशक (तेली), कासाकार (काँसे के बर्तन बनानेवाले), मालाकार (माली), बेसकार (बाँस की वस्तुएँ बनाने वाले) गांधिक, धानिक (अनाज बनाने वाले), धनक (मछुए) आदि विभिन्न व्यवसाय अपनाने वाले लोग निवास करते थे। इसके अलावा विभिन्न धातुओं के काम करने वाले लोग भी रहते थे। उस युग में वास्तु कलाकार भी थे जो अपनी कला से भवन प्रासाद, मन्दिर, स्तूप तथा अनेक प्रकार की मूर्तियाँ निर्मित करते थे। भरहूत स्तूप, बोधगया स्तूप तथा साँची – स्तूप के निर्माण का काल शुंग–युग था।

आर्थिक दृष्टि से गुप्त – काल वैभव और सम्पन्नता का काल था। उस युग में विभिन्न उद्योग और व्यवसाय अपने चरमोत्कर्ष पर थे। जनता अत्यंत सम्पन्न और समृद्ध थी।

कालिदास के ग्रन्थों में विविध धातुओं और रत्नों के उल्लेख मिलते है। स्वर्ण कनकसिक्ता (नदियों की बालू में से निकाली गई स्वर्ण धूलि), रजक (चांदी), ताम्र (ताँबा), अयस (लोहा), वज्र (हीरा), पद्यराग (लाल), पुष्पराग (पुखराज), महानील या इन्द्रनील (नीलम), मरकत (पन्ना), वैदूर्य (बिलौर), स्फटिक, मणिशिला (संगमरमर) आदि। वराहमिहिर ने वृहत्संहिता में बाइस मणियों का उल्लेख किया है, जो देश विभिन्न भागों में मिलती थी। हवानच्वाँग ने भी अपने यात्रा–विवरण में अनेक रत्नों के मिलने का विवरण दिया है। स्वर्णकार अपने विविध अलंकारों में रत्नों का उपयोग करता था।[115] रघुवंश से विदित होता है कि तन्तुवाय वस्त्र बनाने में इतने निपुण थे कि उनके कपड़े फूँक मात्र से उड़ जाते थे।[116] शिल्पी द्वारा निर्मित पट–मंडल अत्यंत मोहक आकर्षक और कलायुक्त होते थे।[117] उस समय ऐसे भी वर्ग थे जो व्यापार और वाणिज्य में लगे हुए थे। इसके निमित्त इस वर्ग के लोग देश और विदेश में विभिन्न वस्तुओं का व्यापार करते थे।[118] सैनिक वृत्तिअपनाने वाले शस्त्रकर्म में विश्वास रखते थे तथा उसके परिवार और वर्ग के लोग यही कार्य करते थे।[119] मछली पकड़ने वाले को कालिदास ने धीवर अथवा जालोपजीवी कहा है।[120] प्रयाग–प्रशस्ति में उल्लिखित है कि महादंडनायक हरिशेण महादण्डनायक ध्रुवभूति का पुत्र था। एक अन्य अभिलेख से विदित होता है कि मंत्री पृथ्वीसेन, मंत्री शेखरस्वामी का पुत्र था। इस प्रकार के अनेक गुप्तकालीन उदाहरण मिलते है जिनसे स्पष्ट होता है कि राजसेवा वंशानुगत चली आती थी। शिक्षा और अध्ययन का कार्य करने वाले लोग थे, जो उसी में रूचि रखते थे।[121] इसी प्रकार पोरोहित्य कर्म करने वालों का वर्ग था जो धार्मिक कार्य सम्पन्न कराते थे।[122] वास्तुकार अपने शिल्प से सुन्दर और आकर्षक वास्तुकला का विकास ऐसे ही कुशल और प्रवीण वास्तु–शिल्पियों द्वारा हुआ।[123] अजन्ता, एलोरा, बाघ आदि की गुफाओं की कला उस युग के शिल्पियों की महान् देन है।

गुप्त युग धातु के काम में भी अग्रणी था। मेहरौली का लोहे का स्तंभ आज भी बिना जंग लगे खड़ा है। हजारों वर्षो से उस पर हवा, पानी और धूप का कोई प्रभार नहीं पड़ा। गुप्तों की स्वर्ण, रजत और ताम्र मुद्राएँ भी उनके धातु विज्ञान के विकास का परिचय देती है। साथ ही उन पर बनाई गई स्त्री–पुरूष, पशु–पक्षी और विविध आयुधों की आकृतियाँ उनकी सुन्दर कला की परिचायक है। उस युग में चर्मकार विभिन्न प्रकार की चमड़े की वस्तुएँ बनाते थें। तत्कालीन मूर्तियों और चित्रों से अनेक आकर्षक जूतों का पता चलता है।[124]

पूर्व मध्ययुग तक आकर समाज में विभिन्न उद्योग–धंधे विकसित हो गए थे तथा उनके माध्यम से लोग मनोनकूल धंधा अपनाकर अपनी जीवन यापन करते थे। मेधातिथि के अनुसार उस समय भी विविध परिधान कपास, उन और रेशम के तन्तुओं से बनते थे।[125] सोमेश्वर ने राजा के उपयोग में आनेवाले विभिन्न परिधानों का उल्लेख किया है।[126] जिससे यह विदित होता है कि तत्कालीन समाज में ऐसे व्यवसायियों का महत्व था। मार्कोपोलो और चाओ जुकुआ के विवरणों में भी अनेकानेक भारतीय वस्त्रों के संदर्भ है।[127] सोमदेव ने अनेकानेक वस्त्रो का उल्लेख किया है जिससे लगता है कि उस समय वस्त्रोद्योग अत्यंत विकसित था।[128] खजुराहो, भुवनेश्वर, कोणार्क आदि मंदिरों की विभिन्न मूर्तियों के वस्त्राभूषण तत्कालीन जीवन की समृद्धि के प्रतीक है। वास्तु और शिल्प भी उस युग की अद्वितीय कला थी। मन ओर मस्तिष्क के विलासयुक्त पक्ष का जितना सुन्दर अभिव्यक्तिकरण तद्युगीन कलाकृतियों में हुआ है, उतना साहित्य में नहीं हो सका।

पूर्वमध्ययुग में भी धातु की अनेक वस्तुएँ बनती थीं। हूवानच्वांग ने लिखा है कि नालंदा में राजा पूर्णवर्मा द्वारा बनाई गई ताँबे की बुद्ध की मूर्ति 80 फुट ऊँची थी। वहाँ मंदिर का निर्माण शिलादित्य ने कराया था जो 100 फुट ऊँचा था।[129] कालान्तर में राजा भोज ने धारा नगरी में 50 फुट उँचा लोहे का स्तम्भ बनवाया था, जो इन दिनों तीन भागों में टूटा हुआ पड़ा है। राजाराज चोल ने तंजोर के मंदिर के शिखर ढकने के लिए 3083 पल वजन का ताम्रकलश दान में दिया था।[130]

महमूद गजनी के दरबारी लेखक अल– उत्बी ने तारीखे यामिनी में लिखा है कि मथुरा नगर के दोनों ओर मंदिरों से सटे हजारों गृह थे जो सबसे सब उपर से नीचे तक लोहे की छड़ों से जुड़े हुए थे।[131] भारतीय अभियंता धातु की इस प्रकार की छड़े बराबर बनते थे, जो सत्रह फुट लम्बे और बीस इंच घेरे के होते थे। इस प्रकार की लोहे की छड़े भुवनेश्वर और कोणार्क के मन्दिरों में भी लगी हुई है। जिसके औसतन लम्बाई इक्कीस फुट है। तत्कालीन युग की सबसे लम्बी लोहे की छड़ पैतीस फुट की मिली है जिसकी गोलाई सात से लेकर साढ़े सात इंच तक है तथा वजन छह हजार पौंड। इस युग में लोहे के जलपोत भी बनते थे, जिसका समर्थन केशवसेन के इदिलपुर–प्लेट (अभिलेख) से होता है।[132] अलबीसनी ने ताँबे की मूर्ति का उल्लेख किया है। वह लिखता हैः– थानेश्वर नगर के प्रति हिन्दुओं के हृदय में असीम श्रद्धा है। उस स्थान की मूर्ति का नाम चकस्वामिन है। यह ताँबे की और लगभग मनुष्य के कद की है।[133] उसने धातु के खड्ग बाण भाले आदि का भी विवरण दिया है। हेमचन्द्र ने स्वर्णकार, कर्मार, तक्षायस्कर आदि धातुओं का काम करने वालों का उल्लेख किया है। कर्मार विभिन्न प्रकार के अस्त्र–शस्त्र बनाता था।[134] भारत में अनेक प्रकार के खड्ग बनाए जाते थे। अल–उत्बी लिखता है कि आनन्दपाल के पुत्र ब्रह्मणपाल के सैनिक भवेत खड्ग, नीला भाला और पीत –वर्ण का कवच धारण करते थे।[135] भवेत लोहा अकलुश इस्पात (स्टेनलेस स्टील) की तरह ही होता था जो उस समय लोहे की अत्युत्तम कोटि मानी जाती थी, भोज के अनुसार बनारस, मगध, नेपाल, सौराष्ट्र और कलिंग खड्ग बनाने के लिए ख्यात थे।[136] इस संबंध में शाङ्र्गधर का भी उल्लेख समान है जिसके अनुसर खटि – खट्टर, ऋशिक, बंग, सूरपारक विदेह, मध्यमग्राम, चेदिदेश, सहग्राम और कालंजर इनके प्रधान केन्द्र थे।[137] अग्निपुराण विवृत है कि खट्टर के खड्ग बहुत ही अच्छी किस्म के होते थे, सूरपारक के खड्ग अत्यंत शक्तिशाली एवं अंग और बंग अत्यधिक तीक्ष्ण थे।[138] स्वर्ण रजत लौह ताम्र, शीशा, टिन आदि के अतिरिक्त – तत्कालीन समाज में पारा भी प्रचलित था।[139]

इस प्रकार स्पष्ट है कि समाज में धातुओं का प्रयोग अत्यन्त प्राचीन काल से था। खानों से धातुओं को खोदकर निकालना, रासायनिक क्रियाओं से उन्हें साफ और स्वच्छ करके मनुष्य के उपयोग के योग्य करना, उनसे विभिन्न प्रकार की छोटी–बड़ी वस्तुएँ बना और उन

वस्तुओं को देश के विभिन्न स्थानों तक पहुँचाना धातु संबंधी एक बहुत महत्वपूर्ण व्यवस्था थी। खानों से संबंधित श्रमिकों और अधिकारियों की नियुक्ति तथा उनके कार्यो की देखभाल प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत थी। विभिन्न प्रकार के बहुमूल्य रत्न भी खानों से ही निकलते थे, जिनको तराश और धवल करके आकर्षक बनाया जाता था। कौटिल्य के अनुसार खानों की समस्त व्यवस्था को देखने वाला अधिकारी आकराध्यक्ष कहा जाता था, जो धातुओं और रत्नों से संबंधित समस्त व्यवस्था का निर्देशन करता था, विनिमय के लिए इनकी मुद्राएँ ही नहीं बनती थी, बल्कि विभिन्न प्रकार के घरेलू पात्र, अनेक तरह के युद्धक अस्त्र–शस्त्र भवनों – मन्दिरों में अनेक रूपों में उपयोग रत्नजरित विभिन्न प्रकार के आभूषणों का निर्माण तथा रथों – वाहनों आदि में इनका संयोग भी होता है। हेमचन्द्र के अभिधान चिन्तामणि, द्वयाश्रय महाकाव्य आदि ग्रंथों से इसकी पुष्टि होती है।

संदर्भ सूचीः–

1. तैत्तिरीय संहता, 4.5, 4.2 तक्षभ्यो रथकारेभ्य च वो नमोनमः।
कुलोलेभ्यः कर्मकारेभ्य च वो नमोनमः।
पुञ्जिजश्टेभ्येधनंवक दभ्य च वो नमोनमः।
इशुक दभ्योधन्वक द्भ्य च वो नमोनमः।
2. ऋग्वेद, 9.65.6, द्रुणा सधरथम नुशे, 19, अभिद्रोणानि रोरूबत 1,9, 112.1, 10.85.10
3. वही, 1.105, 18, 10.86.5, प्रिया व्यक्ता तश्टानि।
4. वही, 10.143.5 पतत्रिऽभि नासत्या सातये क तं।
5. वही, 7.5.5.8, तल्पडशीवरीः स्त्रियः।
6. वही, 7.55.8 प्रोश्ठेऽशाया वहेशया नारी।
7. वही, 3.57, स्थिरौ गावौ भवतां बीलुः अक्षः मा ईशा विवर्हि मा युगं वि भारी इन्द्रः पातल्ये ददतां भारीतों अरिश्टनेभेडभि न सचस्व अभिव्ययत्स्व खादिरस्य सारभोजो धेहिस्पन्द ने शिशपायाम्।
अक्षवीलोवीलित वीलसय मा यामादस्मादव जिहियो नः।।
अयस्मान् वनस्पतिर्मा च हामा च रीरिषत्।
स्वस्त्या गृहेभ्यः आवसा आविमोचनात्।।
8. वही, 6.75, 5–8,
बह्वीनां पिता बहुरस्य पुत्रश्चिस्वा कृणोति समनावगत्या।
इशुधिः सङ्शाः पृतना च सर्वाः पृश्टे निनद्धो जयति प्रसूत।।
रथे तिश्ठन नयति वाजिनः पुरो यत्र यत्र कामयते सुसारथिः।।
अभिश नां महिमानं पनायत मनः पश्चादनुयच्छति रश्मयः।।
तीव्रान् घोशान् कृग्वते वृशपाणयोड वा रथेभिःसहवाजयन्ता।
अवक्रामलः प्रपदैरमित्रान शिपान्ति शर्त्रुरपव्यन्तः।।
रथवाहनं हविरस्य नाम यत्रायुधं निहितमस्य वर्म।
तत्ररथा मुपशाग्मं सदेम विश्वाहा वयं सुमनस्यमा नाः।।
9. वही, 10, 136.2 समानि चकुः तसराणि ओतवे।
10. वही, 6.9.2 न अहं तं तुं न विजानामि ओतुं न वयन्ति।
11. वही, 10.26.6, वायः अविनां आवासासि ममृजत।
12. वही, 2.3.6, उशसानक्त वय्या इव रण्विते तंतु ततं संवयंती।
13. वही, 3.38.4, पुनः स अव्यत विततं वयन्ति।

International Journal of Research in Social Sciences
Vol. 9, Issue 4, April - 2019,
ISSN: 2249-2496 Impact Factor: 7.081
Journal Homepage: http://www.ijmra.us, Email: editorijmie@gmail.com
Double-Blind Peer Reviewed Refereed Open Access International Journal - Included in the International Serial Directories Indexed & Listed at: Ulrich's Periodicals Directory ©, U.S.A., Open J-Gate as well as in Cabell's Directories of Publishing Opportunities, U.S.A

14. वही, 5.47.6 वस्त्रा पुत्राय मातरः वर्यति। अथर्ववेद 10.7.42ः 14.25.1
15. वही, 9.46.32 स सूर्यस्य रश्मिभिः परिव्यत तंतु तन्वानस्त्रिव तं यथाविदे नयन्न तस्य प्रशिशोनवीयसिः पतिर्जनीनां मुशयात्ति निश्क तम्।।
16. वही, 14.130,1 यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्ततः एक भातं देवकर्मेभिरायतः। इसे वयन्ति पितरो आययुः प्रवयापवतेत्यासते तते।।
17. चहर 4.22.2, 5.5.4 एर्ध्समद्राः विप्रथस्व।
18. अथर्ववेद, 19.7.66.1, अयोजाला असुरा मामिनो डयस्मयैः पाशैरकिनो ये चरन्त।
19. अथर्ववेद, 7.5.6 वैदिक इंडेक्स, 1, प0 30ः ऋग्वेद, 8.78,10, हस्तं दात्रं च न आददे।
20. ऋग्वेद, 10.72.2, अधमतः 5.9.5, उवध्नाता इव धमतिः 5.30.15 : पर्णेभि भाकुनाम् अयस्यमम् धार्मः। 9.12 अयोहत्।
21. वही 1.162.20 गात्राणि असिना भिक्षुकः , 10.79.6,
चकर्त गां इव असिः, 1.27.3, द्रहंतर परशुश्न
द्रुहतरः बीलुः अथर्ववेद, 3.19.4ः ऋग्वेद, 5.57.2,
वाशीमंतः त्रश्टिमंतः मनीशिणः सुधन्वानः
इशुमंतः निषंगिणः लु अश्वाः रथ सुरथाः पृरिनामातरः
सुआ युधाःमरूतः याथ न शुभं। 6.47.10,
चोदयधियमयसो न धाराम 1ः6.46,11 यदन्तरिक्षे
पतयन्ति पर्णिनो दिधवस्तिग्ममुर्धानः।
22. ऋग्वेद, 1.43.5, हिरव्यमिवरोचतेः 3.34.9, हिरण्ययमुतभोगं समान, 4.10,6 शुचि हिरण्यम, अथर्ववेद, 192 सुर्यो अग्नि रूत सुवा हिरण्यम्।
23. वहीं, 10.75.8, स्वष्वा सिन्धुसुरथा सुवासा
हिरण्ययी, 6.61.7, उतस्या नः सरस्वती धोरा
हिरण्यवर्तनि, 8.26.18, सिन्धुरिहरवयवर्तनिः।
24. वही, 1.117.5, शुभे रूक्मं न दर्शतं निरवातः अथर्ववेद, 12.1.6, 26.14
25. शतपथ ब्राह्मण, 2.1.1.5, सरेतसमेव कृत्सनमग्निमाधत्ते
तस्माद्धिरण्थं संभवति।, तैत्तिरीय संहिता, 6.1.7.1,
वैदिक इंडेक्स, 2 प 0 504
26. ऋग्वेद, 2.33.10, अर्हन् निश्कं यजतं विश्वरूपम्ः
अथर्ववेद, 5.15.3 देवा निश्कमिव प्रतिमुञचत्। ऋग्वेद, 10.85.8, स्तोमाः आसन् प्रतिधयः कुरीरं, अथर्ववेद 6.138.3, कुरीरिण कुधिः।, अथर्ववेद, 6.138.3, कुरीरमस्य शीर्षाणि कुम्बं चाधिनिदध्मसि, ऋग्वेद, 8.78.3 उतनः कर्णशोभनापुरूणि, 1.12.14, हिरण्यकरण मणिग्रीवम्।
27. यजुर्वेद 3.2.1ः वैदिक इंडेक्स, 1 प 0 171ः 2 प 0 176ः
मैत्रायिणी उपनिशद् 3.3, तानिह वा एतानि गुणानि
पुरूषेणेरितानि चक्रर्मिप म त्पनेतिः। ऋग्वेद, 1.116.7,
भातं कुंभान असिचतं सुरायाः, 1.117.6, शतं
कुंभान असिचतं मधूनाम् 1, 1.117.12, हिरण्यस्थ इव कलशं।
28. वहीं, 8.5.38, चर्मम्ना अभितो जनः।
ऋग्वेद, 6.75.11, गोभिः संनद्ध पतति प्रसूताः 10.27.22
अथर्ववेद, 1.2.3, ऋग्वेद 1.121.9, अस्मानमुपनीत

मृम्वाः 6.47.26 गोभिः सन्नद्धो असि वलयस्वः
6.46.14, गुभीता बाह्वोर्गवि य 6.53.9, गो ओपाशा ऽ ऽ घ णे
पशुसाधनी। शतपथ ब्राह्मण 2.1.1,10 भा)0कुभि चर्म
विहन्यात। : ऋग्वेद, 1.85.5, चर्मेवोद भिव्युग्न्दन्ति भूम
ऋग्वेद, 6.47.99 र्दुदुभे सजूः इन्द्रेण, देर्वेः।
29. वाजसयेनि संहिता, 30.7
30. शतपथ ब्राह्मण, 1.6.4.11. 13.4.3.11
31. ऐतरेय ब्राह्मण, 3.30.3, 4.25.8.9, 7.18.8, बृहइरीएसक दनलिशद्, 1.4.12.
32. यजुर्वेद, 18.13, अथर्ववेद, 11.3.1.7, 9.5.4,
33. बौधयान श्रोत सूत्र, 15.13.14, नेदीय एनमेते कर्मक त
उपसंगच्छन्ते तक्षणाष्च रथकृश्च मयस्कृश्च
कुलालाश्च द्धयाः कर्माराः नखकृते सप्तमें।
34. पारसकर गृह्यसूत्र, 1.4.13, अथोत्तरीयम्। या अकृन्तन्ना।
वयं या अतन्वत। याश्चदेवीस्तनभितो ततन्य।
तास्त्वया देवीर्जरसे संव्ययस्त्र। युष्मतीद परिध्त्स्व वास इति
35. कात्यायन श्रौत सूत्र, 1.4.13, तार्प्य परिधापयति। क्षौमं त्रिपाणं वा। धश्तीन्नमेके।
36. वही, श्लोक 11 और 12 पाण्डवं च निवसते। अधिवासं संप्रतिमुच्याश्णीशं संवेश्ट्य निदीतेऽग हते नाभिदेशेः परिहरते वा।
37. बौ0 श्रौ0 सू0, 6.13 ।
38. आश्वलायन गृहयसूत्र 3.12.9–10।
39. शांखायन गृहयसूत्र पृ0 49, 1.22.16.17, मोदमयी गापयेत, महा हैमवीं वा।
40. आपस्तम्भ श्रौत सू0, 20.115.9 ।
41. बौ0 श्रौ0 सू0, 12.12. अथ वाराही उपानहा उपमुञचते।
काठक श्रौत सूत्र, 15.6–23, वराहोपानहा उपमुच्चते।
42. बो0 श्रौ0 सू0 15.6, भातं धृतं चर्माणि, भातं मधु
चर्माणि, भातं तण्डुल चर्माणि, भातं पृथुक
चर्माणि भातं लाजा चर्माणि, भातं, घाना चर्माणि।
43. वही, 15.14, कुलालानां स शास्तिवैश्कर्विशति विधायामय
एवमिष्ट काकुरूत तिस्त्रो महतीः कृंभीः कुरूतः।
आश्वलायन गृ0 सू0 3.12.11, ऋग्वेद, 6.75.14
अहिरिव भोगैः पर्येति बाहूं ज्यायहेतिं परिवाधमानः।
44. बर्लिगेम, बुद्धिस्ट लीजेन्ड्स, 28.1, पृ0 167.259, 323
45. जातक, 2.18
46. अर्थशास्त्र, 2.3 नत्वेवे काष्ठययम्। अग्निरवहितो हि तस्मिन् वसति।
47. बर्लिगेम, बुद्धिस्ट, लीजेन्ड्स, 28.1 पृ0 270:29, 2 पृ0 350
48. मिलिन्दपण्हो 413, तच्छको कालसुत्तं अनुलोमेत्वा रूक्खं तच्छति।
49. वही, फेग्गुअपहरित्वा सारं आदियति।
50. दीघ निकाय, पयासिरजन सुत्तंम्, 19 तेन हि
राजञच उदमते करिस्यामि यदा वा सीतो।
51. बर्लिगेम, बुद्धिस्ट, लीजेन्ड्स, 29.2 पृ0 186 ।

52. मिलिन्दपण्हो 5.4 पृ0 323।
53. जातक, 6.189, कम्माराणं यथा उक्का अनतोज्झायति नो वहि।
54. विनय पिटक, 1.238 ।
55. नाया यम्मकहा, 1 पृ0 42।
56. रीज डेविड्, बुद्धिस्ट इंडिया, पृ0 90।
57. बर्लिगेम, बुद्धिस्ट, लीजेन्ड्स, 28.1 पृ0 233 ।
58. जातक, 5.282।
59. माज्झिम निकाय, 3,102, नेक्खजम्बो नदं दक्खं
कम्भारपुत्तं उक्कामुखे सुकुसुलसपहट्ठं पंडुकम्बले
निक्खित्तं भासति च विरोचति च।
60. बर्लिगेम, बुद्धिस्ट, लीजेन्ड्स, 29.2 पृ0 65–66 ।
61. वही , 288,1 पृ0 249।
62. दीर्घ निकाय, ब्रह्मा गाले सुत्त, 15।
63. बर्लिगेम, बुद्धिस्ट, लीजेन्ड्स, 29.2 पृ0 86–87 ।
64. वही, 30.3 पृ0 15।
65. जातक, 5.45।
66. बर्लिगेम, 28.1 पृ0 274।
67. शीलवन्नाग जातक, 1,320।
68. वही।
69. बब्बु जातक, 1.478, 479।
70. चुल्लवग्ग, 5.17.2।
71. जातक, 6.432।
72. संयुक्त निकाय, 3.151, दीध निकाय, 2.50।
मिलिन्दपण्हो, 5.331।
73. मज्झिम निकाय, 1.36।
74. वही, 1.385।
75. जातक, 4.81।
76. मज्झिम निकाय, 1.37।
77. जातक, 1.95।
78. वही, 1.20, 2.321, 482।
79. मिलिन्दपञहो, 5.331, जातक, 1.384, 2.250, 4.324
2.227, 2.221, 2.87, 5.128, विनय पिटक, 1.272।
80. आवश्यक चूर्णि, 156.282, निशीथ चूर्णि, 15.1058,
बृहत्कल्प भाश्य, 2.3444 यभगवती, 16.1 आदि।
81. आवश्यक चूर्णि, 156।
82. वहीं, 282।
83. निशीथ चूर्णि, 15.1058 य वृहत्कल्प भाष्य, 2.3444।
84. आवश्यक चूर्णि, 2.59।
85. काशिका, 4.1.152, काटि शब्दः कारूणां तन्तुवायादीनां वाचकः।
86. अर्थशास्त्र, 2.36, कारूशिल्पिनः।

87. कात्यायन, वार्तिक, 4.1.159।
88. पाणिनि, 6.2.63, राजा च प्रशंसायाम्।
89. महाभाष्य, 2.2.1, तक्षा राजकर्मणि प्रवर्तमानः।
स्वकर्म जहाति।
90. पाणिनि, 4.3.118।
91. वही, 5.1.16।
92. वही, 3.2.21।
93. वहीं, 5.4.32, 8.3.97, 4.2.2 आदि।
94. वहीं, 3.1.123।
95. वही, 3.4.154, 6.4.94, 4.3.138।
96. वहीं, 5.4.30, लोहितान्मणौ।
97. वहीं, 3.3.112, आवयन्ति अस्मिन् 1:5.270, 5.4.160 तन्तुवायशलाका।
98. वही, 5.2.79 तंत्रादचिरापहृते।
99. महाभाष्य, 5.3,55।
100. पाणिनी, 5.1.15, चर्मणोऽञ।
101. वही, 7.3.47, 4.1.42
102. वही, 5.2.64, आकर्शेकुशलः आकर्श इति सुवर्णपरीक्षार्थो निकपोपलः।
103. वही, 3.1.146, 3.1.47, 4.4.56, 3.5.55, 3.1.145।
104. अर्थशास्त्र, 2.12.2.3, एवं मूल्यं विभागं च व्याजी परिधमत्ययम्।
शुल्कं वैधरणं दण्डं रूप रूपिकमेव च।।
खनिभ्यो द्वादशविधं धातुं पण्यं च संहरेत्।
एवं सर्वेशु पण्येशु स्थापयेन्मुखसंग्रहम्।।
105. वही 2.12, कश्तभण्डव्यवहारमेकमुखमत्ययं चान्यत्र
कर्तश्केतशविकेतश्णां स्थापयेत्। आकरिमपहरन्तमष्टगुणं
दापयेदन्त्र रत्नेभ्यः। रतेनमनिसश्ष्टोपजीविनं च
बद्धं कर्म कारयेत्। दण्डोपकारिणं च।
106. एंशिएंट इंडिया ऐज डेस्क्राइस्ड बाई मेगस्थानीज ऐंड एरियन, 11,41 पृ0
40, Ancient India as described by Megasthnise and Aryan.
107. अर्थशास्त्र, 3.13, सुवर्णाध्यक्षः सुवर्णरजतकर्मान्तानाम
सम्बन्धावेशनं चतुः शालामेकद्वारामक्षशालां कारयेत।
विशिखामध्ये सौवर्णिकं शिल्पवन्तमभिजातं कारयेत।
108. वही, क्षेपणो गुणः क्षुद्रकमिति कर्माणि। क्षेपणः काचार्पणादीनि। गुणः सुत्रवानीदीनि।
धनं सुषिरं पश्षतादियुक्तं क्षुद्रकमिति।
109 अर्थशास्त्र, 2.23, क्षौमंदुकूलकिमितानकंकटहरिताल।
110 वही सूत्राध्यक्षः सूत्रवर्मवस्त्रज्जुंव्यवहारं तज्जातपुरूशैः कारयेत्
उर्णावल्ककार्पासतृल शाणक्षैमाणि च विद्यवान्यड0कन्या प्रव्राजितादण्डा
प्रतिकारिभी रूपीवाभात काभिव
द्वराजदासीभिर्व्युपरतोपरथनदेवदासीभिश्च कर्तयेत्।
111 वही, 4.1 रजकाः काष्ठफलकरलक्ष्णशिलासु वस्त्राणि नेनिज्युः। अन्यत्र
नेनिजतो वस्त्रोपघातं षट्पणं च दण्डं दद्युः। मुदगराड0 कादन्द्वासः परिदधानस्त्रिपणुं

दण्डं दद्युः। परवस्त्रवक्रयाधानेशु च द्वादशपणो दण्डं। परिवर्तने मूल्यद्विगुणों वस्त्रदानं च। मुकुलावदातं शिलापट्टशुद्ध धौतसूत्रवर्ण प्रमश्ष्टश्वेततरं चैकरात्रोतरे दद्युः।

112 फ्रैगमेंट्स, 36,46 प0 85।
113 अर्थशास्त्र, 2.28, शंखमुक्तग्राहिणो नौहाटकान् दद्युः। स्वनौभिवतिरेयुः।
114. मैक्रिंडल, 2: फैगमेंट्स, 23, पृ0 65।
115. मालकिाग्निमित्र, पृ0 4 देखिए वाटर्स, 1 पृ0 178, 225, 239 आदि।
116. रघुवंश 16.43।
117. वही, 5.41, 449.63, 49.73, 7.2, 9.93, 13.79, 16.55, 73 विक्रमोर्वशीय, पृ0 121।
118. मालविकाग्निमित्र, 1.17।
119. रघुवंश, 17.62।
120. शाकुंतलम्, पृ0 183।
121. मालविकाग्निमित्र, पृ0 17।
122. शाकन्तलम्।
123. रघुवंश, 3.71।
124. अमरकोश, 2.6, 110–11।
125. मेधातिथि, मनु0 2.98, 8.321, 4.36।
126. मानसोल्लास, 3.10, 17–20।
127. द बुक आव मार्कोपोलो, 2.389, चाओ जुकुआ, 88।
128. यशास्तिलक, पृ0: 368।
129. वाटर, टी–(On Yauri Chwang's Travels in India 1 vol. London), 171,178, बील. एस., Buddhist Records of the Western World, Translation from Chinese- Hiuen Tsang) ।
130. साउथ इण्डियन इंस्क्रिाप्शन्स, 2, 1.91।
131. तारीखे यामिनी, इलियट एण्ड डाउसन, 2.44।
132. इन्स्क्रिप्शन्स ऑफ बंगाल, 3, 123: 128।
133. ग्यारहवीं सदी का भारत, पृ0 10, (जयशंकर मिश्र)।
134. शब्दानुशासन, 3.2.32, 5.1.104, 6.3.194।
135. इलियट एण्ड डाउसन, 2, पृ0 33।
136. युक्तिकल्पतरू, श्लोक, 24–29।
137. शार्ड0धर पद्धति, श्लोक, 4672–4679।
138. अग्निपुराण, 245, 21–22।
139. रसार्णव, 11.24 ।

❖